Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018

जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष ३, अंक ३३, जनवरी २०१८

साक्षात्कार

'दामुल' कहानी और फिल्म के लेखक शैवाल से साक्षात्कार

ज्ञान चन्द्र पाल
पी-एच.डी.
हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई
मो.- 7744932075
ईमेल- gyan.mgahv@gmail.com

प्रश्न- 'दामुल' कहानी को लिखने की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली?

उत्तर- मध्य बिहार में 'पनहा' प्रथा का प्रचलन है। ऊपरी तौर पर यह जानवरों की चोरी और फिरौती का मसला लगता है, पर शोध करने पर मैंने पाया कि वस्तुतः यह सामंती व्यवस्था की पुनर्स्थापना का साधन है। प्रेरणा के इसी बिन्दु ने 'रविवार' साप्ताहिक में विशेष रपट और बाद में कथा लिखने को विवश किया।

प्रश्न- यदि यह कहानी किसी सत्य घटना पर आधारित है तो इसमें यथार्थ और कल्पना का मिश्रण कितना और कहाँ-कहाँ है?

उत्तर- 'घोसी' जहानाबाद का एक अंचल है। वहाँ थैले में सत्तू-नमक लेकर खूब घूमा। एक रात मुखिया के दालान में सोया था तो कान में एक स्त्री का रूदन सुनाई दिया। वह मुखिया को गालियाँ भी दे रही थी। सुबह उठकर उससे मिला। रजुली थी वो। उसने बताया, मुखिया ने उसके मर्द को चोरी करने के लिए विवश किया था। अब उसे एक विधवा की हत्या के मामले में फंसा दिया है। उसे फांसी की सजा हो गई है। मैंने याद किया तो उसकी आकृति मानस पटल पर उभर आई। शोध के क्रम में उसके पति संजीवना से मुलाक़ात हुई थी। मैंने 'फिरौती नहीं पनहा' रपट में उसका उल्लेख किया था। पहले विषय आया फिर चरित्र फिर पृष्ठभूमि और अंचल विशेष की महत्वपूर्ण घटनाएँ। सबको एकसाथ बुना तो 'कालसूत्र' (1979) कहानी बनी, जिसका प्रकाशन श्रीपत राय के संपादकत्व में छपने वाली 'कहानी' पत्रिका में हुआ।

प्रश्न- इस कहानी में आपने दलितों के लिए 'छोटी औकात वाले लोग' जैसे शब्द का प्रयोग कई जगह किया है। उसकी जगह सीधे 'दलित' या 'छोटी जात वाले' शब्द का प्रयोग क्यों नहीं है?

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष ३, अंक ३३, जनवरी 2018

उत्तर- आवश्यक है इस तथ्य पर ध्यान देना कि कह कौन रहा है? अगर यह माधो पांडे या उसके लोग कह रहे हैं, तो जाहिर है यह उनकी विकृत मानसिकता का परिचायक है। लेखक का उद्देश्य भी यही था। संवाद क्रूड फॉर्म में थे। जो हिंदी पट्टी के ग्रामीण अंचल में हो रहा था, उसे हूबहू प्रदर्शित करना हमारा मकसद था।

प्रश्न- इस कहानी का कौन-सा पात्र आपको सबसे प्रिय है और क्यों?

उत्तर- मेरा प्रिय पात्र रजुली है। वह शोषित मानवता की न्याय-यात्रा है। सजीवन, पुनाई, गोखुल आदि उसके अंग हैं, जो क्रमिक तौर पर कट-कटकर उससे अलग होते हैं। स्वतः नहीं, विशेष षड्यंत्र के तहत। अंत में सजीवना को जब फांसी की सजा होती है तो वह अपना निर्णय लेती है और माधो पर हिंसक प्रहार करने को विवश होती है।

प्रश्न- साहित्यिक कृतियों के माध्यम रूपांतरण को लेकर आपके क्या विचार हैं? क्या किसी कहानी अथवा उपन्यास का दृश्य माध्यम में प्रभावशाली रूपांतरण संभव है?

उत्तर- प्रभावशाली रूपांतरण के लिए आवश्यक है कि निर्माता, निर्देशक और कथाकार का उद्देश्य एक हो। निर्देशक और कथाकार का मानसिक स्तर समान कद वाला हो। दोनों की दृष्टि और जीवनानुभव एक समान हो। तिसपर आवश्यक है कि निर्देशक के द्वारा उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन और समूह भी आवश्यकतानुरूप उपयुक्त चुने जाएँ। जाहिर है, उनका वाजिब इस्तेमाल भी आवश्यक है। फिल्म समूह का प्रयास है, एक व्यक्ति की कोशिशें सार्थक प्रभाव पैदा नहीं कर सकतीं।

प्रश्न- माध्यम रूपांतरण की विशेषताओं और सीमाओं पर थोड़ा प्रकाश डालें।

उत्तर- प्रभावशाली रूपांतरण हो तो फिल्म सर्वकालिक महत्व वाली बन सकती है। उदाहरण के तौर पर 'दामुल' को ही लें। 'तहलका' सहित अन्य कई पत्रिकाओं ने माना कि यह फिल्म 31 सालों के बाद भी प्रासंगिक है और हिंदी पट्टी की ग्रामीण समस्याओं की एकमात्र जीवंत दस्तावेज़ है। 'द हिन्दू' ने इसे आजादी के बाद अब तक की दस सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में गिना; जिसमें जातीय युद्ध को सशक्त तौर पर चित्रित किया गया। तिसपर यह बिहार की अकेली फिल्म है, जिसे बतौर राष्ट्रीय पुरस्कार स्वर्ण कमल मिला अर्थात 1985 की सभी भाषाओं में बनी फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ। उस साल की प्रतियोगिता में अदूर गोपालकृष्णन की 'मुखामुखम' और सत्यजित रे की 'घरे बाइरे' और गौतम घोष की 'पार' भी थी। प्रख्यात फिल्मकार मृणाल सेन ने कहा था, "काश! यह फिल्म मैंने बनाई होती।" जाहिर है प्रभावशाली रूपांतरण वाली फिल्म सर्वग्राह्य और कालजयी होती है। इसके लिए मैंने और प्रकाश झा ने तीन सालों तक स्क्रिप्ट और संवाद पर अथक

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष ३, अंक ३३, जनवरी २०१८

परिश्रम किया था, पर रूपांतरण की एक सीमा होती है। रचनाकार की कथा में विचार और दर्शन होते है। इन्हें विजुअल में रूपांतरित कर पाना कठिन कार्य है। मान लो कथाकार का कथ्य है, "समूह का प्रेम ही क्रांति है।" अब इसे विजुअल स्वरूप देना कठिन है। जब यह घटनाओं में ढलेगा तो स्थूल आकार ले लेगा। रूपांतरण का स्तर पटकथाकार के मानसिक कद पर निर्भर हो जाएगा।

प्रश्न- भारतीय फिल्म निर्माता और निर्देशक उम्दा हिंदी कहानियों की कमी का रोना अक्सर रोते रहते हैं। आप इससे कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर- उम्दा कहानी का रूदन सिर्फ निर्माता का औपचारिक ढोंग है। वे प्रयोग करने से कतराते हैं। आजमाए हुए नुस्खे पर काम करना चाहते हैं। यही कारण है कि 'देवदास' पर कई बार फिल्म बन जाती है। साउथ की फिल्म पर हिंदी फिल्म बनाने का चलन और हॉलीवुड की फिल्म की नकल बनाना उनके संस्कार में शामिल हो गया है। गंभीर साहित्य को पढ़ना उनके वश की बात नहीं। उनकी पहुँच बस चेतन भगत तक ही सीमित है, जो वस्तुतः अंग्रेजी के गुलशन नंदा हैं।

प्रश्न- अक्सर लेखकों का आरोप होता है कि व्यावसायिकता के नाते फिल्म निर्देशक मूल कहानी में काफी बदलाव करते हैं। आपके विचार में क्या ऐसे बदलाव उचित हैं? इसके क्या फायदे और नुकसान हैं?

उत्तर- कहानी में बदलाव जमीनी हो, केन्द्रीय विचार को व्यापकता देता हो तो ग्राह्य होता है, पर यदि बाजार की मांग और व्यवसायिकता के लिए हो तो अनुचित है। मैंने प्रकाश झा के साथ स्क्रिप्ट पर काम किया इसलिए बदलाव मेरे मन के अनुरूप हुआ। पहले कहानी को मैंने 150 पृष्ठों में विकसित किया, तब पटकथा पर काम करने की शुरुआत हुई। संवाद भी मैंने लिखा। हाँ, पहले इसमें मगही का पुट था, पर प्रकाश जी ने कहा कि इसमें भोजपुरी पुट हो तो ज्यादा समझ में आएगा। मैंने वैसा ही किया। अन्य निर्देशकों के साथ भी मेरा अनुभव बुरा नहीं रहा। क्योंकि मैंने ज़्यादातर अपनी ही कहानी पर पटकथा और संवाद लिखा।

प्रश्न- साहित्यिक कृतियों पर आधारित कला फिल्मों की अपेक्षा व्यावसायिक फिल्में बहुत कम बनी हैं। इसका कारण आप क्या मानते हैं? क्या साहित्यिक रचनाओं पर सफल व्यावसायिक फिल्में नहीं बन सकतीं?

उत्तर- साहित्य पर व्यावसायिक फिल्में बनी हैं और बन सकती हैं। कई देशी और विदेशी फिल्में इसके उदाहरण हैं। पर हम मेहनत से भागते हैं। स्क्रिप्ट पर ढंग से काम नहीं करते। लेखक को उचित पारिश्रमिक और महत्व नहीं देते। विदेश में ऐसा नहीं होता। स्क्रिप्ट की नीलामी होती है। लेखक को सृजन की क्रेडिट देते हैं।

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष ३, अंक ३३, जनवरी 2018

प्रश्न- 'दामुल' के बाद आपकी कृति पर दूसरी कोई फिल्म क्यों नहीं बन पाई? क्या आपने इसके लिए कोशिश नहीं की या फिल्म वालों की तरफ से कोई पहल नहीं हुई? क्या प्रकाश झा ने दुबारा ऐसी कोई योजना नहीं बनाई?

उत्तर- मेरी दूसरी कहानी पर भी प्रकाश झा ने फिल्म बनाई है। उसका नाम 'मृत्युदंड' है। सनसुई व्युअर अवार्ड के लिए सर्वश्रेष्ठ कथा की श्रेणी में इसका नॉमिनेशन हुआ था। माधुरी दीक्षित ने हाल में अनुपम खेर के द्वारा लिए गए एक साक्षात्कार में इसे अपनी अविस्मरणीय फिल्म के रूप में रेखांकित किया है। राजन कोठारी और दयाल निहलानी के द्वारा निर्देशित हाल की फिल्म 'दास-कैपिटल' का भी यहाँ जिक्र करना चाहूँगा। इसकी कथा, पटकथा, संवाद मैंने और शुभंकर शैवाल ने लिखी है। इसे जागरण फिल्म फेस्टिवल और हरियाणा इंटेरनेशल फिल्म फेस्टिवल में सर्वश्रेष्ठ फिल्म (जूरी) का अवार्ड मिला है। यह मेरी दो कहानियों 'अकवन का कोट' और 'अर्थतंत्र' पर आधारित है। जहां तक प्रकाश झा का सवाल है, उन्होंने अपनी पहली डॉक्यूमेंट्री फिल्म 'फेसेज़ आफ्टर द स्टार्म' में मेरी कविताओं का उपयोग किया था। यह बिहारशरीफ़ के दंगे पर आधारित थी और इसे भी राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था।

प्रश्न- साहित्यिक कृतियों पर बनने वाली फिल्मों का भविष्य आपके विचार में कैसा है?

उत्तर- अब ध्यान दें हाल की फिल्मों के बॉक्स ऑफिस कलेक्शन पर; तो दिखता है कि दर्शक नए किस्म के विषयों पर बनी फिल्मों को देखना पसंद कर रहे हैं, स्टार उन्हें प्रभावित नहीं कर रहे हैं। यही खास वजह है कि अनुराग कश्यप की 'गैंग ऑफ वासेपुर' दर्शकों को पसंद आती है और उन्हीं अनुराग की 'बाम्बे वेलवेट'बुरी तरह पिट जाती है। सार्थक फिल्मों के लिए 'पिंक' ने नए रास्तों की तलाश की है। 'पीकू' अपनी सहजता और आत्मीयता से बड़े दर्शक वर्ग को अपने साथ जोड़ लेती है तो लगता है कि मौलिक कथाओं की खोज होगी और साहित्यिक कृतियों का जमाना आएगा। सुधी फ़िल्मकार उन्हें अपनी फिल्मों का आधार बनायेंगे।